International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 7 Issue 3, March 2017,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gage as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

मन का स्वरूप वैदिकवाङ्मय के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. सोमनाथ साहु*

शिवसंकल्पसूक्ते विविधाः मनसः अवस्थाः वर्णितास्सन्ति।
प्रस्तते निबन्ध उक्तसूक्तालोके मनोऽवस्थावैचित्र्यं सप्रमाणं वर्णितं वर्तते।

मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः[i] यह उपनिषद-वाक्य मानव मन के महत्त्व को प्रतिपादित करता है। मन के माहात्म्य के बीज वैदिक संहिताओं की प्राप्त होने लगते हैं। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में अध्याय ३४ के प्रारम्भिक ६ मन्त्र 'शिवसंकल्पसूक्त' के नाम से सुविदित है। इन मन्त्रों के देवता मन है। इन मन्त्रों में मन का स्वरूप, स्वभाव एवं गति आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

मन शब्द की निष्पत्ति 'मन ज्ञाने' धातु से या "मनु अवबोधने' धातु से मानी गयी है। यह मनन अथवा अवबोधन, या दोनों का करण है। इसे मननात्मिका अन्त:करणवृत्ति भी कहा गया है।[ii] मन शब्द ऋग्वेद में प्राप्त होता है और वहाँ इसके दूर तक गमन करने का उल्लेख है -

वि मे मनश्चरति दूर आधीः। -ऋग्वेदः ६/९/६

मन का स्वरूप

दर्शन में मन के स्वरूप पर पर्याप्त विचार किया गया है। सांख्य दर्शन में एकादश इन्द्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है। ये अहंकार से उत्पन्न होती है-

सात्त्विक एकादशक: प्रवर्तते वैकृतादहंकारात्।

-सांख्यकारिका, २५

इनमें मन उभयात्मक इन्द्रिय, अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय दोनों ही है-

उभयात्मकमत्र मनः।

- सांख्यकारिका, २६

मनुस्मृति में मन को एकादश इन्द्रिय कहा गया है -

एकादशं मनो ज्ञेयम्।

* सहायकाचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल

- मनुस्मृति: २/९२

न्याय दर्शन में इसे अन्तरिन्द्रिय कहा गया है -

अन्तरिन्द्रियं मनः।

-तर्कभाषा, पृ० २५९

योग दर्शन में मन के लिये 'चित्त' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

-पातञ्जलयोगसूत्र, १/२

वाचस्पति मिश्र ने चित्त को अन्त:करण माना है और यह बुद्धि का उपलक्षक है-

चित्तशब्देनान्त:करणं बुद्धिमुपलक्षयति।

-तत्त्ववैशारदी, पृ० ३

विज्ञानभिक्षु ने 'योगवार्तिक' में 'चित्त' शब्द का अर्थ सामान्य अन्त:करण लिया है, जो वृत्ति-भेद से चार रूपों में (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार) प्राप्त होते हैं। योग-दर्शन में चित्त शब्द से अन्त:करण के अन्तर्गत मन, बुद्धि एवं अहंकार को ग्रहण किया गया है।[iii]

मन का स्वभाव

चञ्चलता एवं गतिशीलता मन का स्वभाव है। गीता में अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं कि यह मन बड़ा चञ्चल, प्रमथन स्वभाव वाला, बली एवं दृढ़ है। इसे वश में करना वायु को रोकने के सदृश अतीव दुष्कर है-

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

-श्रीमद्भागवद् गीता, ६/३४

इसीलिये योगशास्त्र में चित्तवृत्तियों का निरोध परम तत्त्व की प्राप्ति का प्रधान साधन कहा गया है। मन की चञ्चलता का कारण इन्द्रियों से मन का संयोग है, एवं विषयों में विचरण करती हुई इन्द्रियाँ मनुष्य के मन को उसी प्रकार विचलित करती है, जैसे जल में चलती नौका को वायु कर लेती है-

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते। ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायु वमिवाम्भसि।

-गीता, २/६७

शिवसंकल्पसूक्त के अनुसार मन का वैशिष्ट्य

यजुर्वेद के शिवसंकल्पसूक्त में मन की अवस्थायें एवं वैशिष्ट्य इस प्रकार प्राप्त होते हैं-

मन की गति

इस संसार में सबसे अधिक तीव्र गति मन की कही गई है। इस सूक्त का प्रथम मन्त्र मन की गति का उल्लेख करता है-

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

-वाजसनेयी संहिता, ३४/१

अर्थात् जो मन मनुष्य की जाग्रत अवस्था में दूर तक जाता है, चक्षु आदि इन्द्रियों की अपेक्षा दूरगामी है, वह मन मनुष्य की सुषुप्तावस्था में भी उसी प्रकार जाता है। यह दूरंगम है अर्थात् अतीत, वर्तमान एवं अनागत-तीनों कालों में इसकी गति है। यह श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों को प्रकाशित करने वाला एक मात्र प्रकाश है। यह दैव है। देव विशिष्ट-ज्ञान युक्त आत्मा है। वह देव इसके द्वारा प्राप्त किया जाता है, अत: मन दैव है। ऐसा हमारा मन शिवसंकल्प अर्थात् कल्याणकारी संकल्प से युक्त हो। इसी सूक्त के छठवें मन्त्र में इसे 'जविष्ठ' अर्थात् अतिशय वेगवान् एवं अतीव गतिशील[iv] कहा गया है।

कठोपनिषद् में मन के इस गत्यात्मक गुण को हृदयस्थ आत्मा का गुण माना गया है-

आसीनो दूरं व्रजति शयोनो याति सर्वतः।

-कठोपनिषद्, २/२१

यज्ञादि कृत्यों में प्रवृत्ति का कारण मन

मनुष्यों की यज्ञादि कर्मों में जिसके द्वारा प्रवृत्ति होती है, वह कारक तत्व मन है। मन्त्र के पूर्वार्ध भाग में इसका प्रतिपादन किया गया है-

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

-वाज० संहिता, ३४/२

महीधर ने इस मन्त्र का भाष्य करते हुये लिखा है- 'मन:स्वास्थ्य व कर्माप्रवृत्तेः' अर्थात् स्वस्थ मन से ही मनुष्य कर्म की ओर प्रवृत्त होता है। इसी तथ्य को तीसरे मन्त्र के उत्तरार्ध में कहा गया कि बिना मन के कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं किया जा सकता है -

यस्मान्न ऋते किञ्च न कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

-वाज० संहिता, ३४/३

बृहदारण्यक उपनिषद् में भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है। आत्मा के तीन अन्नों- मन, वाणी एवं प्राण में मन प्रधान है। मनुष्य का मन यदि अन्यत्र कहीं लगा रहे तो वह समक्ष उपस्थित वस्तुओं को भी देख-सुन नहीं पाता है-

मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति।

-बृहदारण्यक उपनिषद्, १/२

मन अन्तरीन्द्रिय एवं अपूर्व है

मन की सृष्टि सभी इन्द्रियों से पूर्व हुई एवं यह सभी प्राणियों के भीतर स्थित है-

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

-वाज० संहिता, ३४/२

उव्वट ने इस मन्त्र का भाष्य करते हुये तथा 'यक्ष' का अर्थ करते हुये इसे पूज्य कहा एवं महीधर ने 'अन्त: प्रजानां' शब्द की व्याख्या करते हुये कहा है कि मन प्राणियों के शरीर के मध्य में स्थित है, जबकि अन्य इन्द्रियाँ शरीर के बाहरी भाग में स्थित है, अत: मन अन्तरिन्द्रिय है -

प्राणिमात्राणामन्तः शरीरमध्ये आस्ते इतरेन्द्रियाणि

बहिःष्ठानि मनस्त्वन्तरिन्द्रियमित्यर्थः।[v]

मन का एक विशेषण उपर्युक्त मन्त्र में 'अपूर्व' भी दिया गया है। इस शब्द का भाष्य करते हुये उव्वट ने लिखा है -

अपूर्वं, न विद्यते पूर्वमिन्द्रियं यस्मात्तदपूर्वम्।[vi]

तथा महीधर ने इसे और भी स्पष्ट करते हुये लिखा है

अपूर्व, न विद्यते पूर्वमिन्द्रियं यस्मात्तदपूर्वं इन्द्रियेभ्य: पूर्व मनस: सृष्टेः।[vii]

श्रोत्रादि इन्द्रियों से मन का सम्बन्ध

मानव-मन का ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यही सभी इन्द्रियों को प्रकाशित करता है, अर्थात् इन्द्रियों को कार्य करने के लिये प्रेरित करता है, अत: इसे इन्द्रियों के मध्य ज्योतिस्वरूप कहा गया है-

दूरङ्गमं ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

-वाज० संहिता; ३४/१

इस तथ्य की पुष्टि तीसरे मन्त्र के उत्तरार्ध से भी होती है -

यस्मान्न ऋते किञ्च न कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

-वाज० संहिता, ३४/३

न्यायदर्शन के अनुसार यह मन अणु रूप से हृदय में स्थित होकर[viii] चक्षुरादि इन्द्रियों से सम्बद्ध रहता है।

मन के द्वारा ज्ञान

यह मन ज्ञान-प्राप्ति का करण है। चेत एवं धृति इसी में उत्पन्न होते हैं-

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्न ऋते किञ्च न कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

-वाज० संहिता, ३४/३

महीधर ने 'चेत' शब्द से सामान्य एवं विशेष ज्ञान तथा 'धृति' को धैर्य का वाचक माना है - 'यत् मनः चेतः चेतयति सम्यक् ज्ञापयति तच्चेतः। चिति संज्ञाने, अस्मात ण्यन्तादसुन् प्रत्ययः। सामान्यविशेषज्ञानजनकमित्यर्थः। यच्च मनोधृतिधैर्यरूपम्। मनस्येव धैर्योत्पत्तेर्मनसि धैर्यमुपचर्यते कार्यकारणयोरभेदात्।'[ix]

वेदत्रयी का धारक मन

ज्ञान का करण होने के कारण मन ज्ञान के आगार वेदत्रयी को धारण करता है, एवं सभी प्राणियों में संज्ञान इसी के द्वारा होता है -

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।

यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

-वाजसनेयी संहिता, ३४/५

इस मन्त्र में शब्दात्मक तथा सभी पदार्थों से सम्बद्ध ज्ञान को रथनाभि से जुड़ी अरों तथा पट से जुड़े तन्तुसमवाय के माध्यम से दर्शाया गया है। महीधर अपने भाष्य में इसे स्पष्ट करते हैं -

'यथा आराः रथचक्रनाभौ मध्ये प्रतिष्ठितास्तद्वच्छब्दजालं मनसि। किञ्च प्रजानां सर्वं चित्तं ज्ञानं सर्वपदार्थविषयिज्ञानं यस्मिन् मनसि ओतं प्रोतं निक्षिप्तं तन्तुसन्ततिः पटे इव सर्वं ज्ञानं मनसि निहितम्।'[x]

मन की त्रिकालज्ञता

मन का ज्ञान-सामर्थ्य इतना सक्ष्म एवं दरगामी है. कि सशक्त मन वर्तमान ही नहीं, भूत एवं भविष्य का भी ज्ञान कर सकता है। इसके त्रिकालज्ञ स्वरूप का वर्णन शिवसंकल्प सूक्त में इस प्रकार किया गया है-

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

-वाजसनेयी संहिता, ३४/०

इस मन्त्र की प्रथम पंक्ति का अर्थ करते हये उव्वटभाष्य में लिखा है।[xi]

'येन मनसा इदं भूतं भूतकालम्, भुवनं वर्तमानकालम्, भविष्यत् भविष्यत्कालं च।

महीधर अपने भाष्य'[xii] में लिखते हैं- **त्रिकालसम्बद्धवस्तुषु मनः प्रवर्तत इत्यर्थः।**

मन की तीनों कालों में गति का सामर्थ्य ऋषियों एवं मुनियों को प्राप्त था, जिसके बल पर वे त्रिकालदर्शी होते थे। मन की त्रिकालज्ञता के सामर्थ्य के कारण ही भाष्यकारों ने इसे सम्भवत: आत्मरूप एवं पूज्य माना -

'यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां.....'।

-वाजसनेयी संहिता, ३४/२

इस मन्त्र में अपूर्व शब्द का अर्थ आत्म रूप एवं श्रेष्ठ भी माना गया है। उव्वट ने अपूर्वमनपरम्[xiii] तथा महीधर ने रपूर्वमात्मरूपमित्यर्थ:[xiv] कहा है।

मन द्वारा प्रवर्तन एवं नियमन

मन का सबसे बड़ा सामर्थ्य मनुष्यों को किसी कार्य या मार्ग पर आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करना, साथ ही वेग पर अथवा किसी मार्ग या कार्य पर आगे बढ़ने से रोकना भी है। यह प्रवर्तन तथा नियमन का सामर्थ्य केवल अन्त:करण मन को ही प्राप्त है। शेष करण या इन्द्रियाँ इसके अधीन होकर कार्य करती है। अत: जिस व्यक्ति के मन पर विवेक का नियन्त्रण हो उसकी सभी इन्द्रियाँ नियन्त्रित रहती है। शिवसंकल्पसूक्त में मन को सुन्दर सारथि (सुषारथिः) कहा गया है एवं मनुष्यों को अश्व के सदृश कहा गया है। जिस प्रकार सुन्दर अर्थात् कुशल सारथि अश्वों का अपने वश में रखते हुये अपने अभिलषित मार्ग पर ले जाता है, साथ ही प्रग्रह से वेगवान अश्वों पर नियन्त्रण भी रखता है, इसी प्रकार कल्याणकारी मन शोभन सारथि के समान मनुष्यों को सन्मार्ग पर प्रेरित करता है साथ ही उन पर नियन्त्रण भी रखता है। यह हृदय में प्रतिष्टित है, जरा रहित है, सबसे अधिक वेगवान् है। यही भाव शिवसंकल्पसूक्त के अन्तिम मन्त्र में वर्णित है-

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

-वाजसनेयी संहिता, ३४/६

इस मन पर वार्धक्य का प्रभाव नहीं पड़ता एवं इससे अधिक वेगवान कोई अन्य नहीं है, यह भी मन का वैशिष्ट्य है।

रथ का रूपक कठोपनिषद् में भी प्राप्त होता है, किन्तु वहाँ मन को प्रग्रह कहा गया है। उस रूपक के अनुसार आत्मा रथी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है, मन उसका प्रग्रह है, इन्द्रियाँ अश्व है एवं उनके विषय गोचर है। प्राणी आत्मा, इन्द्रिय एवं मन से युक्त होकर सुख-दुःखादि का भोक्ता होता है-

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।

-कठोपनिषद्

३/३,४

मन की शिवता

शिवसंकल्पसूक्त में मन को शोभन सारथि के समान कल्याणकारी नियन्ता कहा गया है। कठोपनिषद् में सुन्दर मन की व्याख्या इस प्रकार की गई है-

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।।

-कठोपनिषद्, ३/६

जिस मनुष्य के पास विज्ञानवती एवं विवेक सम्पन्न बुद्धि होती है, मन शान्त एवं स्थिर होता है, उसकी इन्द्रियाँ उसी प्रकार उसके वश में होती है, जिस प्रकार उत्तम अश्व सारथि के नियन्त्रण में होते हैं।

यही मन की शिवता एवं शिवसंकल्पता है।

मन की अशिवता

उपर्युक्त स्थितियों के विपरीत जो व्यक्ति अविवेकशील एवं अस्थिर मन वाला है, उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में उसी प्रकार नहीं रहती, जैसे दुष्ट अश्व सारथि के वश में नहीं रहते-

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः।।
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति।।

-वहीं, ३/५,७

गीता में भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, उसी में प्रज्ञा अर्थात् स्थिर बुद्धि निवास करती है। इसके विपरीत इन्द्रियों के वश में रहने वाले व्यक्ति का मन विषयों का चिन्तन करते हुए उनमें आसक्त हो जाता है। उस आसक्ति के कारण उस मनुष्य में अभीत्सित के प्रति प्रबल वासना उत्पन्न होती है। इच्छा की पूर्ति न होने पर क्रोध, क्रोध के कारण सम्मोह

(किंकर्त्तव्यविमूढता) सम्मोह के कारण स्मृतिभ्रंश एवं स्मृति के भ्रंश होने पर बुद्धि नष्ट हो जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप जब कुछ नष्ट हो जाता है-

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।
ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।

-गीता, २/६१-६३

मन का शिवसंकल्प

मन को सन्मार्ग पर प्रेरित करना उसे कल्याण के मार्ग पर उन्मुख करना मन का शिवसंकल्पत्व है। मन कल्याणकर हो इसके लिये चित्त के प्रसादन का उपाय करना चाहिये। चित्त के प्रसादन का उपाय बताते हुये महर्षि पतञ्जलि ने कहा है-

मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्

-योगसूत्र, १/३३

किसी के सुख, दुःख, पुण्य एवं अपुण्य के प्रसंगों में मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा भाव क्रमशः रखने से चित्त का प्रसादन होता है। मैत्री आदि भावनाओं के माध्यम से ईष्या, असूया आदि मन के मल प्रक्षालित होते हैं, एवं चित्त कल्मष रहित एवं प्रसन्न होता है। इस प्रकार शान्त, प्रसन्न एवं सुस्थिर मन में शिवसंकल्पता की भावभूमि तैयार होती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि -

1. मन एकादश इन्द्रिय एवं अन्त:करण है जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय एवं पंच कर्मेन्द्रियों से संयुक्त होकर उन्हें कार्य करने के लिये प्रेरित करता है।
2. यह उन इन्द्रियों पर प्रवर्तन के साथ-साथ नियन्त्रण करने का भी अधिकार रखता है।
3. इसकी उत्पत्ति सभी इन्द्रियों से पूर्व हुई है।
4. मन की गति अत्यन्त तीव्र है। यह जाग्रत एवं सुषुप्ति दोनों स्थितियों में गतिशील रहता है तथा इसकी तीनों कालों में गति रहती है।
5. इसके अन्तर्गत बुद्धि, चित्त एवं अहंकार भी आते हैं।
6. यह ज्ञान का करण है। वेदादि इसके भीतर स्थित होते हैं।
7. चञ्चलता इसका स्वभाव है।
8. चाञ्चल्य की स्थिति में यह मनुष्य को अपने लक्ष्य से विचलित करता है।

9. अतः इसका निग्रह आवश्यक है।

---

[i] ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, मैत्रायणी उपनिषद्, भगवतसन्तरणोपनिषद्

[ii] डॉ० कप्तान सिंह यादव - गीता की प्रासंगिकता, पृ० २३

[iii] वाजसनेयी संहिता, शिवसंकल्पसूक्त, ३४/६ पर उव्वट एवं महीधर भाष्य

[iv] वही, ३४/२, महीधर भाष्य

[v] तर्कभाषा, पृ० २५९

[vi] वाजसनेयी संहिता, ३४/२ पर उव्वट भाष्य

[vii] वहीं, महीधर भाष्य

[viii] तच्चाणुपरिमाणं हृदयान्तर्वर्ति - तर्कभाषा, पृ० १९१

[ix] वाजसनेयी संहिता, ३४/३ पर महीधर भाष्य

[x] वहीं, ३४/५ पर महीधर भाष्य

[xi] वहीं, ३४/४ पर महीधर भाष्य

[xii] वहीं, ३४/४ पर महीधर भाष्य

[xiii] वहीं, ३४/२ पर महीधर भाष्य

[xiv] वहीं, ३४/२ पर महीधर भाष्य